इक्कीसवीं शताब्दी के हिन्दी उपन्यासों में मूल्य–संक्रमण एवं मूल्य विघटन

विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

की पी-एच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तावित

शोध-प्रारूप

संकाय-मानविकी

विषय-हिन्दी

शोध निर्देशक

डॉ० आनन्द प्रकाश गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा

अनुसंधायिका

मालती कुमारी
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा
पैट क्रमांक- 22090221

इक्कीसवीं शताब्दी के हिन्दी उपन्यासों में मूल्य–संक्रमण एवं मूल्य विघटन

भूमिका

भारतीय समाज में साहित्य निरंतर समाज की गतिविधियों की क्रियात्मक अनुभूति का प्रतिपादन करता आ रहा है। यही कारण है कि साहित्य को समाज की संवेदनाओं का कोष कहा जाता है। साहित्य में विभिन्न सामाजिक, मान्यताएँ, सांस्कृतिक–प्रतिमान तथा जीवन–मूल्य प्रतिफलित होते हैं। साहित्य के माध्यम से समाज के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक–मूल्यों की अभिव्यक्ति की जाती है। साहित्य में उपन्यास एक ऐसी ही विधा है जिसमें समूचे मानव जीवन की अभिव्यक्ति हुई है।

समाज में जीवन–मूल्य एक ऐसी अवधारणा है जिसका संबंध मानव से है। जीवन-मूल्य को ही मानव–व्यवहार एवं समाज–कल्याण की कसौटी माना जाता है। जीवन-मूल्य स्वतंत्रता और समानता का प्रतिपादन करते हैं तथा एकता, समन्वय, सामन्जस्य और संतुलन को बनाये रखते हैं। व्यक्ति की प्रतिष्ठा का आकलन उसके जीवन-मूल्य से किया जाता है। जीवन-मूल्य व्यक्ति को सकारात्मक बनाते हैं। जो व्यक्ति मूल्यहीन जीवन जीते हैं समाज में व्यर्थ माने जाते हैं। सिद्धांत और मूल्य–जीवन को ऊर्जा देते हैं। समाज हो चाहे परिवार सबका संचालन कुछ आदर्शों और सिद्धांतों से होता है। यदि जीवन में इसका अभाव हो जाय तो समाज का ढाँचा गड़बड़ाने लगता है। किंतु विडम्बना यह है कि आज भारतीय समाज में उन्हीं आदर्शों और सिद्धांतों का स्खलन हुआ है जो हमारे जीवन के उत्प्रेरक रहे हैं। वस्तुतः हमारा समाज अभी मूल्य-संक्रमण की स्थिति में है। कुछ नये मूल्यों का उदय हो रहा है और कुछ पुराने मूल्य ही पूजे जा रहे हैं। नये मूल्य अभी निर्माण की प्रक्रिया में है। अतः अस्पष्टता और दिशाहीनता का होना स्वाभाविक है। परम्परा बिखराव की अवस्था में है। बुद्धि का वैभव और आत्मा की शांति दो चीजें हैं। यही कारण है कि समय के हर करवट के साथ परिवेश की टूटन साफ सुनाई पड़ती है।

इन सारी परिस्थितियों के जड़ में है– भूमण्डलीकरण की आँधी। 21 वीं शताब्दी में भूमण्डलीकरण, वैश्वीकरण, अमेरिकीकरण, आदि से उत्पन्न बाजारीकरण एक ओर जहाँ हमारी अर्थव्यवस्था को पंगु बनाया है वहीं दूसरी ओर वह हमारी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की जड़ खोदने के लिए भी पूरी तरह आमादा है। उसके सांस्कृतिक आक्रमण की आँधी आर्थिक से भी तीव्र गति से आयी जिसने हमारी सांस्कृतिक जड़ों को पूरी तरह हिला डाला। अब तक जितनी भी विदेशी संस्कृतियाँ, विभिन्न आक्रमणकारियों द्वारा भारत में लायी गयी या थोपी गयी, वे हमारे जीवन परिवेश में पूरी तरह घुलमिल गयी थी। कुछ वर्षों बाद उनकी अलग पहचान भी नहीं रह गयी। वे हमारे संस्कृति के महानद में समाकर एकमेव हो गयी, उन्हें हमने अच्छी तरह आत्मसात कर लिया। किंतु इस संस्कृति ने निजता, सांस्कृतिक मूल्यों, सभ्यताओं के पारम्परिक स्वरूप में बदलाव लाने की चेष्टा नहीं की अपितु पुरातन सभ्यता और संस्कृति के सबकुछ को हटाकर अपना स्थान ग्रहण कर लिया है। नव उपनिवेशवाद से उत्पन्न दुर्घर्ष परिवेश में वैश्वीकरण की आँधी जितने प्रबल और उग्र रुप से आयी कि उसे वश में करना कठिन हो गया। वस्तुतः यह अमेरिकीकरण की आँधी भी उस महाशक्ति का आँधी जिसने पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था एवं संस्कृति को अपना परावर्ती बना लिया। फलस्वरुप हमारी सामाजिक परिस्थितियों में भारी परिवर्तन दिखाई देने लगा।

औद्योगिक विकास, बढ़ती महँगाई, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि, आर्थिक चिंता, राजनीतिक संघर्ष, भ्रष्ट–शासन व्यवस्था द्वारा जनता का शोषण धर्म के नाम पर शोषण आदि से हमारा परिवेश बहुत ही उलझा और पेचीदा होता जा रहा है। भौतिकवादी विचारधारा ने लोगों को उपभोक्ता बना दिया है। जहाँ हर व्यक्ति एक वस्तु बनकर रह गया है। भूमण्डलीकरण के प्रभाव में मूल्यों और संबंधों की भी नफा–नुकसान के पैमाने पर परखा जा रहा है। पाश्चात्य संस्कृति और भारतीय संस्कृति के बीच के टकराब ने पारिवारिक भावनाओं को आहत किया है। परिवर्तन की संस्कृति ने सामाजिक रिश्तों को खण्डित किया

है जिससे समाज में अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हुए हैं जिसके प्रभाव से पारिवारिक विखराब शुरु हो गया है। व्यक्ति विघटन की समस्या उठ खड़ी हो गयी है। पति–पत्नी के बीच प्रेम और माधुर्य संबंधों में कड़वाहट देखी जा सकती है। आज प्रेम के मायने बदल गए हैं। प्रेम सिर्फ लेन-देन तक ही सीमित रह गया है। प्रेम के स्थान पर घृणा ऊपज रहा है। लोग एक-दूसरे को समझने के बजाय तिरस्कार करने लगे हैं। राजनीति नीति विहीन होकर कुछ सीमित हाथों में जा सिमटी है। राजनेता आज सेवक नहीं प्रशासक बन गये हैं। मूल्यहीनता का आलम ऐसा है कि लोग एक-दूसरे से कतराने लगे हैं। आज संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, नारी शोषण बढ़ गया है, समाज में वृद्धों की स्थिति दयनीय हो रही है। मातृत्व–प्रेम की विसंगतियों के कारण बच्चे स्नेह-ममता आदि से वंचित हो रहे हैं। अंधाधुंध शहरीकरण के दौड़ में गाँव की आबोहवा दूषित हो रही है। अब विवाह एक संस्कार नहीं करार बनकर रह गया है और विवाह पूर्व प्रेम मानो एक नैतिकता बन गयी है। पति-पत्नी, भाई-बहन, भाई-भाई, पिता-पुत्र, माँ-बेटा आदि सभी पारिवारिक संबंधों में तनाव की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है। परिणामतः पारिवारिक विघटन अटल बनता जा रहा है।

आज हर व्यक्ति आंतरिक दबाव व द्वन्द्व में जी रहे हैं। आधुनिक परिवार में परिवार के मायने बदल गये हैं। अब कोई किसी पर भरोसा नहीं करता। पारिवारिक संबंध आवश्यकता और अधिकार तक सीमित रह गये है। विज्ञान के नये आविष्कार होने से संपूर्ण विश्व आपस में जुड़ा अवश्य है पर व्यक्ति की मानसिक संकीर्णता ने उसे विखण्डित कर खूंखार बना दिया है। मानव मूल्यों का महती ह्रास हुआ है। धर्म की आड़ में पाखण्ड पनपा है, धर्म का बाजारीकरण हो रहा है। धर्म के नाम पर राजनेता रोटियाँ पकाते हैं और चंदे के नाम पर बाबाओं का संपति संग्रहण जारी है। संन्यासी रोज बलात्कार और हत्या के जुर्म में जेल जा रहे है। महिला सशक्तिकरण के नाम पर महिलाओं को सुविधा और अवसर दिये जा रहे है किन्तु वे इसका गलत फायदा उठा रही है।

साहित्य और कला से जुड़े प्रबुद्धजनों की कठिनाई यह है कि वे न तो नये को स्वीकार कर पा रहे हैं और न ही पुरातन को छोड़ पा रहे हैं। फिर भी पुरातन परम्परा उनसे बिना पूछे छूट रहा है भले वे उस पर कितना ही स्यापा क्यों न करें? यही कारण है कि हमारे साहित्य में मूल्य–संक्रमण की स्थिति सार्वभौमिक सत्य के रूप में नजर आती है। परंपरागत मूल्यों के प्रति अनास्था या अविश्वास का निर्माण हो जाना परंतु उनके स्थान पर कोई नये मूल्यों का सामने नहीं आना ही मूल्य-संक्रमण की अवस्था है जिसकी वजह से मानव–जीवन में उथल–पुथल मची है। आज संसार के सभी क्षेत्रों में परिस्थितियाँ संक्रमण के दौर से गुजर रही है। इस संबंध में डॉ० धर्मवीर भारती का कथन रेखांकित करने योग्य है कि– “संपूर्ण सभ्यता जिन मूल्यों पर आधारित थी, वे मूल्य ही झूठे पड़ गये है।” डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय का भी कहना है कि– “नयी पीढ़ी के सामने न तो कोई आदर्श ही है या न कोई उच्च जीवन–मूल्य ही। पुराने जीवन-मूल्य खण्डित हो चुके थे और उसके स्थान पर नवीन और पुष्ट जीवन-मूल्यों की स्थापना नहीं हुई थी।” परंतु यह कथन पूर्ण सत्य नहीं है क्योंकि **मूल्य–संक्रमण की अवस्था तो परिवर्तित मूल्य और विघटित मूल्य के बीच की अवस्था है।**

साहित्य का सर्वाधिक लोकप्रिय और सर्वाधिक सशक्त व मुक्त विधा होने के कारण उपन्यास में संपूर्ण जीवन अथवा जीवन के अधिकांश स्वरूप का परिचय सहजता से अभिव्यक्त किया जा सकता है। परिणामत: जीवन मूल्यों के चित्रण में भी यह भी सशक्त है। इसने समकालीन परिवेश के बहुआयामी जीवन-दर्शन का चित्रण, नये मूल्यों का चित्रण, उसका संक्रमण व विघटन को भी कुशलता से उद्घाटित किया है। भूमण्डल की कदाचित् कोई ही ऐसी समस्या होगी जिस पर समकालीन हिन्दी उपन्यास में विचार नहीं हुआ हो।

शोध विषय की आवश्यकता

21 वीं शताब्दी में भूमण्डलीकरण के जिस रूप ने हमारे सांस्कृतिक परिवेश में परिवर्तन ला दिया है उससे हमारे जीवन-मूल्यों में भारी बदलाव आया है। जिन बहुत-से जीवन-मूल्यों को हम सदियों से उदात्त और श्रेष्ठ की कोटि में रखते चले आ रहें थे वे पिछले लगभग बीस-पच्चीस वर्षों में वैश्वीकरण की आँधी में समय-बाध्य (आउट-डेटेड) हो चले। नयी पीढ़ी पुरातन को नकारकर अपनी एक नयी लीक स्थापित करती हुई वैश्विक संदर्भों से अपने को गौरवान्वित अनुभव करती है। नव उदारवाद और आर्थिक विकास की नयी समृद्धियों, ऐश्वर्यों ने नयी पीढ़ी के आदर्श और सुख के केन्द्र परिवर्तित कर दिये हैं। भौतिक समृद्धि ने उन्हें आलीशान कार, कोठी और कोठी के अन्दर के अगणित, अमित संभार प्रदान कर उन्हें भव्य भवन (मकान) तो दे दिये पर घर की संकल्पना और सुख-स्वप्न इस भौतिक समृद्धि के बीच कहीं बिला गये। मनुष्य मानवीयता, मानवीय-ऊष्मा और शुचिता खोकर निरंतर छीजता चला जा रहा है। यह माया के 'पानी बीच मीन पियासी' की स्थिति है। सब कुछ होकर और पाकर भी कुछ न होने की दयनीय स्थिति है। हिन्दी उपन्यासों में मूल्य–संक्रमण और मूल्य-विघटन के इस स्थिति का चित्रण दो रूपों में मिलता है– प्रथमत: इस रूप में कि घटनाओं और पात्रों के माध्यम से इस परिवर्तित मूल्य दृष्टि का परिचय दिया गया है और दूसरे चिंतन, मनन के स्तर पर इस मूल्य-परिवर्तन पर अपनी सोच प्रस्तुत करते हुए मूल्य क्षरण पर अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति दी गयी है। यह काम कुछ कठिन था। इसकी अभिव्यक्ति उपन्यास में प्राय: कम ही मिलती है और दायित्व के साथ कहा जा सकता है कि मूल्य-क्षरण की पीड़ा की अभिव्यक्ति अधिकांशत: कथाकारों की वरिष्ठ पीढ़ी द्वारा ही हुई है। उन्होंने परिपक्व आयु के अनुभव के आधार पर मूल्य-क्षरण का पीड़ा भरा आख्यान रचा है। इसे कुछ सशक्त उपन्यासकारों के संदर्भ में विश्लेषित किया जा सकता है।

क्षरित होते श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों को बचाने की चिंता साहित्यकार की ही चिंता क्यों है, वह भी शेष संसार के साथ उसी गति और विधि से क्यों नहीं चल सकता? दरअसल साहित्यकार की चिंता

कबीर की ही चिंता है जो 'सुखिया सब संसार है खावै और सोवै, दुखिया दास कबीर हैं जागे और रोवै।' प्रत्येक युग में साहित्यकार मानवीय-मूल्यों की चिंता करते हुए अत्याचार और अनाचार के खिलाफ अपनी शब्द-शक्ति का जोर लगाते हुए एक नैतिक अदालत का काम करता है। पूरी दुनिया में मानवीय अधिकारों का जो हनन हो रहा है, हिंसा, हत्या, कष्ट, उत्पीड़न, यातना, बेईमानी, बदकारी के खिलाफ सैलाब उमड़ रहे है, लेकिन फिर भी कुछ ऐसा भी है जो 'शुभ' है। और इसी 'शुभ' को बचाने की चिंता किसी भी साहित्यकार की चिंता है। काशीनाथ सिंह 'काशी का अस्सी' में मनुष्यता को बचाने की चिंता इसी रूप में करते हैं कि आज हम भौतिक द्दष्टि से उन्नति और समृद्धि की चरम सोपान आयात कर रहे हैं, आज "डॉक्टर, इंजीनियर, अफसर सब बनना चाहते हैं आदमी कोई नहीं बनना चाहता।" उपन्यास में आया यह संक्षिप्त-सा वाक्य बहुत कुछ कह देता है। 'रेहन पर रग्घु' में भी काशीनाथ सिंह इंसानियत की विलुप्ति की चिंता करते हैं। उनका रग्घु मास्टर इस दुनिया की परिवर्तित मूल्य-द्दष्टि से हैरान-परेशान है कि आज व्यक्ति को परखने के सारे मानदण्ड बदले हुए हैं– रघुनाथ मास्टर को यह इलजाम होता है कि शरीफ इन्सान का मतलब है निरर्थक आदमी, भले आदमी का मतलब है कायर आदमी। मानव मूल्यों में बहुत बड़ी पीड़ा लाज संबंधों में ऊष्मा-क्षरण की है। आज संबंध, उन संबंधों का प्रेमभाव, ऊष्मा जिस रूप में शेष हो रही है, वह जीवन का बहुत ही पीड़ादायक और कारूणिक पक्ष है। पारिवारिक संबंधों में आया रीतापन, छूँछापन विचलित करनेवाला है। मनुष्य के भावहीन हो जाने की अमानवीय स्थिति को 'शेष कादम्बरी' में अलका सरावगी ने एक भीख माँगनेवाली लड़की के दुर्धनाग्रस्त होकर मरने पर अभिव्यक्ति दी है– "मंटो पार्क के चौराहे पर भीख माँगने वाली दस साल की लड़की की सड़क पर पड़ी लाश को जिसे कोई गाड़ी टक्कर मारकर चली गयी थी, इर्द-गिर्द इक्कठी भीड़ के चेहरों पर कोई दुःख या अफसोस की छाया तक क्यों नहीं पड़ी थी?" रवीन्द्र वर्मा के उपन्यास में पीढ़ियों में आये अंतराल और मूल्य-परिवर्तन का दर्द बार-बार आता है– 'निन्यानबे', मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगा, 'दस बरस का भँवर', तथा 'आखिरी मंजिल' इन सभी में यह पीड़ा अभिव्यक्ति पाती है। संबंधों की ऊष्मा शेष होकर चुक जाने के

संदर्भ में 'वृद्धावस्था की दारुण दशा हिन्दी उपन्यास की एक बड़ी चिंता है जिसे बहुत गहराई और व्यापकता से चित्रित किया गया है। वृद्धावस्था हमारे सामाजिक परिदृश्य में इतनी भयावह समस्या का रूप ले चुकी है कि प्रत्येक रचनाकार की मानसिक स्थिति उससे आक्रांत है, यही कारण है कि इस कथ्य पर विपुल कथा-साहित्य रचा गया है यथा– चित्रा मुद्गल का 'गिलिगडु', काशीनाथ सिंह का 'रेहन पर रग्घु', कृष्णा सोबती का 'समय सरगम', रवीन्द्र वर्मा का 'आखिरी मंजिल', रमेशचन्द्र शाह का 'सफेद परदे पर' आदि।

वैश्विक अपसंस्कृति की आँच से साहित्य जगत् भी अछूता नहीं रह सकता था, वह भी अपने समय और समाज से प्रभावित होता है। फलतः साहित्य-रचना में भी मूल्य दृष्टि में बदलाव विभिन्न रूपों में लक्षित किया जा सकता है। अंग्रेजी कथा लेखन ('फिक्शन') विशेषतः भारतीयों के अंग्रेजी कथा–लेखन के प्रभाव से हिन्दी उपन्यास में भी काम अभिमुखी (सैक्स ओरिएंटेड) लेखन की प्रवृत्ति बढ़ी और बढ़ती जा रही है। विषय-विशेषज्ञों का मानना है कि अंग्रेजी कथा–साहित्य विशेषत: उपन्यास में उत्तर आधुनिकता की एक बहुत बड़ी प्रवृति-यौन, काम प्रवृतियों का साहसिक बोल्ड चित्रण है। कितने ही उपन्यासों में काम यौन–चित्रण इस रूप में आया है कि कुछ अंग्रेजी की सर्वाधिक बिक्री वाली (बैस्ट सेलर्स) कृतियों की प्रविधियों का प्रयोग किया गया। संभोग चित्रण की कथागत स्थितियाँ जबरदस्ती प्रकल्पित की गयी है ठीक उसी प्रकार जैसे हिन्दी सिनेमा इसी सबको माँग के नाम पर परोस रहा है। जिस प्रकार फिल्मों में तड़के और मसालों के रुप में एक या एकाधिक आइटम साँग डालना जरूरी-सा हो गया है, इसी प्रकार उपन्यासों में काम-चित्रण का एक आवश्यक कथा-युक्ति के रूप में प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है। यदि इन उपन्यासों में से ये चित्रण हटा दिये जाय तो न कथा पर कोई प्रभाव पड़ता है न ही उपन्यास की प्रभावान्वित में कोई कमी आती है। इसे जनप्रियता पाने का सस्ता नुस्खा भी कहा जा सकता है। कृष्ण बलदेव वैद, मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में ऐसे वर्णनों को देखा जा सकता है। कहना न होगा कि हिन्दी उपन्यास की यह प्रवृत्ति वैश्विक प्रभावों के कारण ही निरंतर बढ़ती जा रही है।

साहित्यिक राजनीति से व्यापी साहित्य-क्षेत्र की मूल्यहीनता का चित्रण भी कुछ उपन्यासों में किया गया है। रवीन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यास 'आख़िरी मंज़िल' में दो लेखकों माधव दयाल और मदन मोहन के जीवन-चर्चा पर कई प्रश्न उठाये हैं जिनसे साहित्य के क्षेत्र में फैली मूल्यहीनता का पश्चिम मिलता है। किस प्रकार जोड़-तोड़ की राजनीति से लोकार्पण कार्यक्रमों का प्रयोजन होता है। साहित्य के लिए दिये जाने वाले पुरस्कारों के पीछे की राजनीति क्या होती है, ये सारी बातें मूल्य की बात करने वाले साहित्यकारों के मूल्य को भली-भाँति दर्शाता है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास में जीवन के प्राय: प्रत्येक क्षेत्र में निरंतर हो रही मूल्य-क्षरण की स्थितियों पर चिंताकुल दृष्टि से विचार किया गया है। इन उपन्यासों में बड़े ही सूक्ष्म संवेदन से देश, समाज एवं व्यक्ति पर पड़ने वाले वैश्वीकरण का प्रभाव एवं उससे उत्पन्न संक्रमण व विघटन की स्थिति को चित्रित किया गया है। इस चित्रण का सबसे उम्मीदकारी व उज्ज्वल पक्ष है कि इसमें यथा स्थिति का विरोध करने वाले पात्रों व स्थितियों के सृजन द्वारा इन उपन्यासकारों ने अपनी सार्थक भूमिका-निभाई है।

ऐसी स्थिति में आज आवश्यकता इस बात की है कि सभी प्रकार के पूर्वग्रहों, राजनीतिक दबाबों से पूर्णत: निर्बन्ध होकर साहित्य के उपन्यास विधा का श्रेष्ठता के साथ समुचित अवलोकन करें तथा कृतियों पर पुनर्विचार द्वारा उनका समुचित मूल्यांकन करें। इस तरह जिन कृतियों का अतिरिक्त महिमा-मंडन हुआ उन पर सम्यक् चर्चा हो तथा जो रचना अलक्षित रह गयी है उसे विभाषित किया जाय। आज के मूल्य-संक्रमण के दौर में जिस तरह से आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए नागरिक हितों की अनदेखी की जा रही है वह अत्यंत भयभीत करने वाला है। अत: साहित्य कला–संस्कृति और विचारों से व्यक्ति और समाज के अंत: सम्बन्धों में जो बिखराब आया है, उपभोक्ता संस्कृति जिस रूप में मूल्यहीनता को जन्म दे रही है, सामाजिकता को तोड़ रही है एवं अपसंस्कृति को पोषित कर रही है यह चिंतनीय विषय है। ऐसे में 21वीं शताब्दी में हिन्दी उपन्यासों में 'मूल्य-संक्रमण एवं मूल्य-विघटन' जैसे ज्वलंत विषय पर शोध–कार्य की आवश्यकता अपरिहार्य है।

शोध विषय का महत्त्व

युगीन परिवेश में व्यक्ति संत्रास, कुण्ठा, विसंगति पूर्ण अस्थिरता तथा अहम की भावना से बुरी तरह ग्रस्त है। 21वीं शताब्दी का उपन्यास इन्हीं जीवन-यथार्थ का चित्रण किया है जो वैचारिक धरातल पर मानवीय सामाजिक मूल्य से संबंधित है। समकालीन सामाजिक स्थिति में व्यक्ति की टूटन यांत्रिक जीवन, पारिवारिक संबंधों में बदलते स्त्री-पुरूष के रिश्ते, वृद्धों की उपेक्षा, बालकों की असहाय स्थिति, सुनेपन की तीव्रता आदि स्पष्ट देखा जा सकता है। इन सारी स्थितियों का कारण हमारा उपभोक्तावादी संस्कृति है जिसके कारण हमारे जीवन-मूल्यों का ह्रास हो चुका है। यह सत्य है कि जीवन मूल्य परम्पराओं से प्राप्त होते हैं और समाज में इसका विशिष्ट महत्व है। अर्थात् जहाँ समाज है वहाँ उसके विकास के लिए निजी परम्पराएं होती ही है। ये परम्पराएं ही स्थिर होकर जीवन-मूल्यों की सृष्टि करती है और मानव-विकास में सहायक होती है। इन परम्पराओं के प्रति भी लोगों का दृष्टिकोण बदलता रहता है। जब नये दृष्टिकोण तथा चिंतन मानदण्ड बनते है तब प्राचीन परम्पराएं नये कलेवर पहनकर नये रूप में सामने आते हैं जिसका साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। वस्तुत: साहित्य मानव समाज की अभिव्यक्ति और रचनात्मक प्रवृत्ति के विकास में सहयोगी रहा है। जन-भावनाओं की अभिव्यक्ति, संघर्ष और प्रतिरोध की संस्कृति के निर्माण में साहित्य की भूमिका असंदिग्ध है। पूँजीवादी, साम्राज्यवाद, भूमंडलीकरण के माध्यम से पुन: आर्थिक साम्राज्यवाद की स्थापना के लिए प्रयत्नशील है। बाजारवाद और उपभोक्ता संस्कृति इसके आधुनिक हथियार है। इसके प्रयोग से ये हमारे सामाजिक-संस्कृति, सामाजिक-संरचना और पूरातन मूल्यों का विध्वंस कर रहा है। इसने अपने उत्पादों द्वारा एक ऐसी आभासी दुनियाँ को निर्मित किया जिससे आकर्षित हो हम चेतना व विवेक से विरत होकर एक उपभोक्ता मात्र में परिवर्तित हो गए हैं। इसके साथ ही हमारा साहित्य कला एवं संस्कृति भी एक व्यवसायिक उत्पाद मात्र में बदल गया है। हम सदियों से अर्जित अपने मूल्यों को क्षणिक बाजारू चमक-दमक के आगे दाँव पर

लगा देते हैं। सदियों के संघर्ष और बलिदान से अर्जित स्वाधीनता को हमने भूमण्डलीकरण द्वारा प्रस्तुत मूल्यों को गुलामी के रुप में स्वीकार कर लेने पर आमादा हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में प्रस्तुत शोध विषय पिछले दो-ढ़ाई दशकों के हिन्दी उपन्यासों में निहित मूल्य-संक्रमण एवं मूल्य-विघटन के विभिन्न पहलुओं का पुन: विश्लेषण व मूल्यांकन कर एक सभ्य समाज एवं संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करेगा। इस तरह प्रस्तुत शोध विषय का समसामयिक महत्त्व स्वतः लक्षित होता है।

पूर्वकृत शोध

21वीं शताब्दी के हिन्दी उपन्यासों में मूल्य-संक्रमण एवं मूल्य विघटन जैसे विषय पर स्वतंत्र रूप से अब तक किसी प्रकार का शोध कार्य संपन्न नहीं हुआ है। पिछले दो-ढ़ाई दशकों से उपभोक्तावादी भोगशील अपसंस्कृतियों ने इस कदर त्रासदीपूर्ण स्थितियाँ उत्पन्न कर दी है कि साहित्य और कलाओं की उपयोगिता सामान्य मनुष्य को दिखाई नहीं दे रही है, किंतु वैश्वीकरण के इस घोर तमस में भी कला एवं साहित्य ही मनुष्य की संस्कृति के श्रेष्ठ को बचाने का उपक्रम कर सकती है। यह बड़ा ही सुखप्रद स्थिति है कि देश-दुनिया के सचेत वर्ग इससे चिंतित और बेचैन हैं और इन समस्याओं पर विचार-विमर्श का सिलसिला जारी है। इसी क्रम में इससे मेल खाते हुए अब तक कुछेक कार्य संपन्न हुए जिसमें इंद्रनाथ मदान का 'हिन्दी उपन्यास: पहचान और परखा', रामशरण जोशी का 'इक्कीसवीं सदी का संकट', सच्चिदानन्द सिन्हा का 'भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ', प्रभा खेतान का 'भूमंडलीकरण-ब्राण्ड संस्कृति और राष्ट्र', सुश्री नम्रता जोसफ का 'साहित्य और जीवन-मूल्य', सच्चिदानन्द सिन्हा का 'उपभोक्तावादी संस्कृति का जाल', गंगा प्रसाद विमल का 'आधुनिक साहित्य के संदर्भ में' आदि प्रमुख है। इन विद्वानों ने भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप हो रही मूल्यों के क्षरण पर निष्पतिदायी शोध कार्य कर उनसे मुक्ति पाने के उपायों-उपक्रमों पर भी सम्यक् विचार किया है।

शोध के आधार ग्रंथ

1. काशीनाथ सिंह– 'काशी का अस्सी', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003.
2. महीप सिंह– 'अभी शेष है' किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.
3. गोविन्द मिश्र– 'कोहरे में कैद रंग' भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004.
4. असग़र वजाहत– 'कैसी आगी लगाई', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.
5. क्षमा कौल– 'दर्दपुर' भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004.
6. चित्रा मुद्गल– 'गिलिगडु', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली– 2004.
7. रवीन्द्र कालिया– 'ए.बी.सी.डी',बाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.
8. महुआ माजी– 'मैं बोरिशाइल्ला', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली– 2006.
9. मिथिलेश्वर– 'माटी कहे कुम्हार से', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली 2006.
10. गीतांजलि श्री– 'खाली जगह', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2006.
11. रामधारी सिंह दिवाकर– 'अकाल संध्या', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली: 2006.
12. मंजूर एहतेशाम– 'पहर ढलते', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007.
13. रवीन्द्र वर्मा– 'आख़िरी मंज़िल', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007.
14. गीतांजलि श्री– 'तिरोहित' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2007.
15. अलका सराबगी– 'शेष कादम्बरी', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007.
16. उषा प्रियम्वदा– 'भया कबीर उदास', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007.
17. मधु कांकरिया– 'सेज पर संस्कृत' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.
18. अनामिका– 'तिनका तिनके पास', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.
19. अब्दुल बिस्मिल्लाह– 'अपवित्र आख्यान', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.

20. काशीनाथ सिंह– 'रेहन पर रग्घु', राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2008.

21. अलका सरावगी– 'एक ब्रेक के बाद', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.

22. ममता कालिया– 'दुक्खम्– सुक्खम्', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.

23. विभूति नारायण राय– 'प्रेत की भूतकथा', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.

24. मृदुला गर्ग– 'मिलजुल मन', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010.

25. सुधा अरोड़ा– 'यहीं कहीं था घर', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010.

26. संजीव– 'रह गईं दिशाएँ इसी पार', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011.

27. विजय गौड़– 'फाँस', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011.

28. नमिता सिंह– 'लेडीज़ क्लब', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011.

29. रजनी गुप्त– 'कुल जमा बीस', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012.

30. रमेशचन्द्र शाह– 'विनायक', राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली, 2012.

31. गिरिराज किशोर– 'स्वर्णमृग', राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली, 2012.

32. सच्चिदानन्द सिन्हा– 'भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007.

33. रामशरण जोशी– 'इक्कीसवीं सदी के संकट', राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2008।

शोध की परिकल्पना

21वीं शताब्दी के हिन्दी उपन्यासों पर भूमंडलीकरण, बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इन उपन्यासों में सांस्कृतिक–मूल्यों का क्षरण स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पारंपरिक सभी प्रकार के मूल्य स्खलित होते दिखाई देते हैं और नये आयातित मूल्यों का हावी होते हुए देखा जा सकता है। इस तरह अपसंस्कृति के तत्व ने मानवीय चेतना को गहरे स्तरों तक प्रभावित किया है। दरअसल, 21वीं शताब्दी का काल वैश्विक क्षितिज पर मूल्यों की दृष्टि से संक्रमण और विघटन का काल है। वैश्वीकरण के झंझावाती थपेड़ों ने जिस तरीके से संपूर्ण मानवीय संवेदनाओं को आक्रांत किया है वह अत्यंत ही भयभीत करने वाला है। मानवीय संवेदनाओं का संपूर्ण ढाँचा ढहता हुआ दिखाई दे रहा है। प्रस्तावित शोध-प्रारूप में वैश्वीकरण और उपभोक्तावादी मूल्यों प्रभाव के फलस्वरूप सांस्कृतिक मूल्यों में जो गिरावट आयी है उसे समझने का पर्याप्त अवसर मिलेगा। इतना ही नहीं नयी सदी में जो आर्थिक-सांस्कृतिक उन्माद की धारा बही है उसे भी दर्शाने का सफल प्रयास होगा।

शोध की प्रविधि

प्रस्तावित शोध-प्रारूप 'इक्कीसवीं शताब्दी के हिन्दी उपन्यासों में मूल्य-संक्रमण और मूल्य- विघटन' जैसे शोध विषय के विश्लेषण के लिए 'आगमन' और 'निगमन' पद्धतियों का उपयोग किया जा सकेगा। निगमन पद्धति से जहाँ संभावित अनुमान का तार्किक विश्लेषण संभव है वहीं आगमन पद्धति द्वारा अन्वेषित तथ्यों का विश्लेषण। निगमन पद्धति से प्रस्तुत शोध प्रारूप की तथ्य पर अवधारणाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण में सहायता मिलेगी वहीं आगमन पद्धति से परम्परा, उनकी सांस्कृतिक चेतना, साहित्यिक दृष्टि एवं युगीन–चेतना का विश्लेषण हो सकेगा। शोध में गुणात्मकता और प्रभावशीलता लाने के लिए साक्षात्कार और प्रश्नावली विधि का उपयोग भी अपेक्षित होगा।

शोध अध्ययन की सुविधा हेतु प्रस्तावित शोष-प्रारूप को निम्नलिखित अध्यायों में विभक्त किया जाना उचित प्रतीत होता है:–

1. प्रथम अध्याय:–

हिन्दी उपन्यास की विकास–प्रक्रिया और मूल्य–संक्रमण

2. द्वितीय अध्याय:–

21वीं शताब्दी के उपन्यासों में वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण मूल्य–संक्रमण

3. तृतीय अध्याय:–

बाजारवाद, उपभोक्तावाद एवं वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण मूल्य विघटन

4. चतुर्थ अध्याय:–

हिन्दी उपन्यासों में नयी स्त्री चेतना और मूल्य विघटन

5. पंचम् अध्याय:–

21वीं शताब्दी के उपन्यासों में शिल्प के नये आयाम और मूल्य विघटन की समस्या

6. षष्ठम् अध्याय:–

i) शोध के निष्कर्ष और मौलिक मान्यताएँ

ii) प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का सम–सामयिक मूल्य

परिशिष्ट:–

i) संदर्भ ग्रंथों की सूची

ii) पत्र–पत्रिकाओं की सूची

प्रस्तावित ग्रंथों की सूची

1. रामशरण जोशी– ‘इक्कीसवीं सदी के संकट’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.
2. गंगा प्रसाद विमल– ‘आधुनिक साहित्य के संदर्भ में’, मैकमिलन, दिल्ली 1978.
3. सच्चिदानन्द सिन्हा– ‘उपभोक्तावादी संस्कृति का जाल’, रोशनाई प्रकाशन, पश्चिम बंगाल, 2012.
4. इंद्रनाथ मदान– ‘हिन्दी उपन्यास: पहचान और परख’, लिपि प्रकाशन, दिल्ली
5. प्रभा खेतान– ‘भूमंडलीकरण : ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र’’ सामयिक प्रकाशन 2007.
6. सच्चिदानन्द सिन्हा– ‘भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ’ वाणी प्रकाशन, 2007.
7. असगर वजाहत– ‘कैसी आगी लगाई’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.
8. काशीनाथ सिंह– ‘काशी का अस्सी’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003.
9. गीतांजलि श्री– ‘खाली जगह’ राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006.
10. अनामिका– ‘दस द्वारे का पींजरा’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली’ 2008.
11. अनामिका– ‘तिनका तिनके पास’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.
12. अब्दुल बिस्मिल्लाह– ‘अपवित्र आख्यान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. 2008.
13. अमित कुमार सिंह– ‘भूमण्डलीकरण और भारत: परिद्दश्य और विकल्प’, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.
14. बच्चन सिंह– ‘उपन्यास का काव्यशास्त्र’, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली– 2008.
15. यशवंत व्यास– ‘कल की ताजा खबर’, वाग्देवी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.
16. रोहिणी अग्रवाल– ‘इतिवृत्त की संरचना और संरूप’, आधार प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006.
17. विजय बहादुर सिंह– ‘उपन्यास: समय और संवेदना’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007.
18. विमला लाल– ‘वृद्धावस्था का सच’, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, 2006.

19. गोपाल राय– ‘हिन्दी उपन्यास का इतिहास’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006.

20. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी– ‘आलोचना के हाशिए पर’, नेशनल पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2008.

21. अरविन्द मोहन– ‘मीडिया, शासन और बाजार’, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.

22. प्रभा खेतान– ‘बाज़ार के बीच: बाजार के खिलाफ’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.

23. लता शर्मा– ‘औरत अपने लिए’, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006.

24. मृदुला सिन्हा– ‘मात्र देह नहीं है औरत’, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007.

25. सुभाष सेतिया– ‘स्त्री अस्मिता के प्रश्न’, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, 2006.

शोध निर्देशक

डॉ० आनन्द प्रकाश गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा

अनुसंधायिका

मालती कुमारी
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा
पैट क्रमांक- 22090221